The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 1 | January 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और किसान

डॉ. परवेज़ मोहम्मद

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, जी. एफ. कॉलेज, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश

ईमेल: parvezalig5@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.18648513

आजादी से पूर्व ब्रिटिश राज में सरकार की आर्थिक नीतियां जमीदारों, साहूकारों के मन माफिक और किसान विरोधी थी। अंग्रेज, जमीदारों के माध्यम से किसानों पर बहुत अत्याचार करते थे। उनसे अधिक लगान, अवैध कर और ज्यादा से ज्यादा भू-राजस्व लिया जाता था और साथ ही अवैतनिक श्रम भी कराया जाता था, ऐसा न करने पर जमींदार व सामंत मनमानी और बेदखली करते थे। यही कारण था कि किसानों पर कृषि भूमि का अत्याधिक बोझ व कर्ज़ बढ़ने लगा जिससे किसानों की आर्थिक व सामाजिक स्थिति खराब होने लगी। अंग्रेजी शासन के अन्याय और गलत आर्थिक नीतियों के कारण ही उपनिवेश काल में किसानों के विद्रोह शुरू हुए। "अंग्रेजी राज में बंगाल के रंगपुर जिले में हिंदुस्तान का पहला महत्वपूर्ण कृषक-विद्रोह (1783) हुआ था। कुछ छुटपुट विद्रोहों के बाद संथाल विद्रोह (1855), पावना का किसान-आंदोलन (1873) और चंपारण का किसान-आंदोलन (1917) हुआ। ये सभी अंग्रेजों के आर्थिक जुल्म के खिलाफ कृषकों के विद्रोह थे।"[1] इतिहासकारों ने भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम 1857 में किसानों के योगदान की उपेक्षा की है जबकि "पहले राष्ट्रीय संग्राम में कृषकों की व्यापक भागीदारी थी।"[2] क्योंकि यह केवल सैनिक विद्रोह ही नहीं था बल्कि अंग्रेजी शासन के खिलाफ़ एक व्यापक जन विद्रोह था और किसान अंग्रेजी शासन की शोषणवादी नीतियों से सबसे ज्यादा प्रताड़ित थे। इस प्रसंग पर डॉ. रामबक्ष अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद और भारती किसान' की प्रस्तावना में लिखते हैं कि- "किसानों ने आरंभ से ही अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करने के लिए सशस्त्र संघर्ष चलाये। इसीलिए उन्होंने 1857-58 के विद्रोह में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इन संघर्षों का उद्देश्य ब्रिटिश पूर्व राजाओं और कृषि-संबंधों को पुनः स्थापित करना था। उन्होंने ब्रिटिश भारत के अधिकारियों, जमीदारों और महाजनों की हत्याएं की, पुलिस और फौज का मुकाबला किया।"[3] प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दमन के पश्चात् सम्पूर्ण भारत पर अंग्रेजों प्रभुत्व स्थापित हो गया। "वारेन हेस्टिंग्स ने सबसे पहले इस धारणा को सामने रखा कि सारी जमीन सरकार की है। जमीन जोतने वाला किसान तो सरकार से

जमीन किराए पर लेता है। अतः जमीन की उपज का सरकारी हिस्सा 'टैक्स' नहीं 'रेंट' है"[4] सन् 1793 में कॉर्नवालिस ने पहले ही स्थाई बंदोबस्त के तहत बंगाल, बिहार और उड़ीसा की जमीन जमीदारों को दे रखी थी जिसके तहत उपज का एक बड़ा हिस्सा किसानों द्वारा जमीदारों और सरकार को देना होता था यही कारण था कि 18वीं सदी के अंत तक भारत में नील आन्दोलन (1859-60), पाबना विद्रोह (1873-76), कूका विद्रोह (1872) दक्कन विद्रोह (1874) तथा रंपाओं का विद्रोह (1879) आदि किसानों के संघर्ष चलते रहे।

बीसवीं सदी भरतीय राजनीति की दृष्टि से बेहद ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सन् 1915 में भारत वापसी के बाद गांधी जी का भारतीय राजनीति में प्रार्दुभाव हुआ उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत यहाँ के किसानों और श्रमिकों को अत्यधिक भूमि कर और भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाने के लिये एकजुट किया। सन् 1917 में बिहार के चंपारण जिले में महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक अहिंसक सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरुआत की क्योंकि यहां पर ब्रिटिश सरकार द्वारा गरीब किसानों को बटाईदारी के तहत नील की खेती करने के लिए मजबूर किया जा रहा था। गांधी जी ने किसानों से नील की खेती बंद करने और अंग्रेजों द्वारा लगाए गए अवैध करों का भुगतान न करने का आग्रह किया जिससे सन् 1918 में, ब्रिटिश सरकार को इस मामले की जांच करने के लिए मजबूर होना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप नील प्रणाली को समाप्त कर दिया गया और किसानों पर करों में कमी की गई।

चंपारण की सफलता के बाद महात्मा गांधी के नेतृत्व में गुजरात के खेड़ा जिले में सन् 1918 में किसानों के लिए एक अहिंसक सविनय अवज्ञा आंदोलन किया गया जिसे इतिहास में खेड़ा सत्याग्रह के नाम से जाना जाता है। पहले से ही खराब फसल और अकाल से पीड़ित खेड़ा के ग़रीब किसानों पर ब्रिटिश सरकार ने अत्यधिक कर लगाकर उनकी कमर तोड़ दी थी। गांधी जी ने किसानों से उनकी शिकायतों का समाधान होने तक कर का भुगतान न करने का आग्रह किया। ब्रिटिश सरकार ने दमन के साथ जवाब दिया, जिसमें गांधी जी और अन्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। हालाँकि, आंदोलन लगातार गति पकड़ता रहा और अंततः अंग्रेजों को कर निलंबित करने और गिरफ्तार किए गए नेताओं को रिहा करने के लिए मजबूर होना पड़ा। "इन दोनों आंदोलन में मुख्य बात यह है कि इनमें देशी जमींदारों और रजवाडों के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा गया। ये दोनों ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी आंदोलन किसानों और राष्ट्रीय नेताओं के मिलनबिंदु हैं।"[5] इस दौरान प्रसिद्ध क्रांतिकारी विजय सिंह 'पथिक' के नेतृत्व में चलने वाला 'बिजोलिया' का किसान आंदोलन करीब अर्द्ध शताब्दी तक चला। तदुपरांत "5 फरवरी 1922 से 7 फरवरी तक किसानों और राज्य के कर्मचारियों तथा ए. जी. जी. श्री हॉलैंड के बीच संधि-वार्ता चली और अंत में श्री हॉलैंड ने किसानों की मांगों को स्वीकार किया।"[6]

राजस्थान के 'बिजोलिया' का ये संघर्ष भारतभर में चर्चा का केन्द्र बना। "स्वतंत्रता-प्राप्ति से पहले किसानों ने... बारदोली, दक्षिण में तेलंगाना किसान युद्ध तथा भारत के अन्य भागों में भी किसानों ने संघर्ष किए।"[7] इन सभी संघर्षों का ही परिणाम था कि किसानों में व्यापक जागरूकता आने लगी अब उन्होंने अपने अधिकारों के भारत भर में संघ और संघटनों का निर्माण शुरू कर दिया। स्वामी सहजानंद सरस्वती ने 'बिहार प्रांतीय किसान सभा', एन.जी. रंगा ने 'आंध्र प्रांतीय रैयत सभा', मालती चौधरी ने उड़ीसा में 'उत्तकल प्रांतीय किसान सभा', की स्थापना की। संयुक्त प्रांत में 'किसान संघ' व अकरम खां, अब्दुर्रहीम और फजलुलहक के प्रयासों से 'कृषक प्रजा पार्टी' की स्थापना हुई। बाद में अन्य सभी किसान नेताओं के प्रयास से सभी प्रांतीय किसान सभाओं को मिलाकर एक 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना की गई जिसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ (सन् 1936) में हुआ। इसमें सभा का प्रधान स्वामी सहजानंद सरस्वती व सचिन एन.जी. रंगा को चुना गया। किसान इस संघ के माध्यम से अपने अधिकारों को उठाकर संघर्ष करते आये हैं। परंतु जिस तरह ब्रिटिश शासन में अंग्रेजों ने किसानों के संघर्षों को कुचला उसी प्रकार स्वतंत्रत भारत में भी लोकतांत्रिक सरकारों ने किसान संघों को तोड़ने व उनकी जायज़ मांगों को दबाने का लगातार प्रयास किया है। भारत के "एलीट और शिक्षित बुद्धिजीवी 19वीं सदी में साम्राज्यवाद के समर्थन में खड़े थे ऐसे बुद्धिजीवी आज वैश्वीकरण के समर्थन में खड़े हैं।"[8]

कॉरपोरेट जगत और पूंजीपतियों के दबाव में सरकार ने 1920 में किसान विरोधी तीन बिल ले आई किसानों के लंबे संघर्ष के बाद सरकार ने बिलों को वापस लिया। न्यूनतम समर्थन मूल्य जैसी जायज़ मांगो को लेकर आज फिर किसान सड़कों पर है, परंतु उनकी आवाज़ सुनने को कोई तैयार नही है। "इस लोकतंत्र में जिसकी बात है, क्या अब उसे ही कहनी होगी? कोई दूसरा उसकी बात नहीं कहेगा? दलितों की लड़ाई दलितों को, स्त्रियों की लड़ाई स्त्रियों को, मुसलमानों की लड़ाई मुसलमानों को, औद्योगिक या सेवा-प्रतिष्ठानों के श्रमिकों की लड़ाई खुद वहां के श्रमजीवियों को जिस तरह लड़नी पड़ती है, क्या किसानों की अपनी लड़ाई भी उन्हें अकेले लड़नी होगी और हमेशा बुरे हाल में रहना होगा?"[9]

संदर्भ सूची:

- शंभू नाथ, 'किसानों का इंडिया', 'वर्तमान साहित्य', 28, एमआईजी, अवन्तिका-1, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001, अंक: अक्टूबर, 2013, पृष्ठ-13
- वही, पृष्ठ-13

- रामवृक्ष, 'प्रेमचंद और भारती किसान' वाणी प्रकाशन, 61-एफ, कमला नगर, दिल्ली-110007, संस्करण: 1982, पृष्ठ- 07-08
- वही, पृष्ठ-16-17
- वही, पृष्ठ-33
- चौधरी महिपाल सिंह 'नाला', 'किसान-चेतना और चौधरी चरण सिंह', ज्ञान भारती प्रकाशन, 4/14 रूपनगर दिल्ली: 110007, संस्करण, 1981, पृष्ठ-78
- वही, पृष्ठ-79
- शंभू नाथ, 'किसानों का इंडिया', 'वर्तमान साहित्य', पृष्ठ-19
- वही, पृष्ठ-19